– सुभाष चन्द्र

आजीवक कबीर का स्त्री चिंतन

सारांश :

किसी भी दार्शनिक या कवि की सामाजिक दृष्टि के केन्द्र में स्त्री दृष्टि ही प्रधान होती है। दूसरे शब्दों में, स्त्री दृष्टि ही उसकी सामाजिक दृष्टि की कसौटी या आईना होती है। ऐसी स्थिति में स्त्री–विरोधी दृष्टि को समाज विरोधी दृष्टि का पर्याय माना जा सकता है। वर्णवादी सगुण ईश्वर के समानांतर समतामूलक निर्गुण ईश्वर के आधार पर मानव मात्र की समानता और बराबरी की बात करने वाला साधक कवि स्त्री–विरोधी होकर समाज में नहीं ठहर सकता है, फिर उसे संन्यासियों और योगियों की तरह घर, परिवार और समाज से पलायन कर के अन्यत्र शरण लेनी पड़ेगी। गठों में क्या होता रहा है और हिन्दू देवी–देवता क्या करते हैं, इस सब से कबीर भलीभाँति परिचित हैं। कबीर गृहस्थ साधक हैं और उनकी कविता एक गृहस्थ की कविता है। कबीर किसी भी हालत में संन्यासी या योगी बनकर घर त्यागने का समर्थन नहीं करते। इससे यह तथ्य प्रत्यक्ष होता है कि कबीर की स्त्री के प्रति दृष्टिकोण योगियों और संन्यासियों के स्त्री– दृष्टिकोण से एकदम पृथक और स्वतंत्र है। इस तरह कबीर और उनका साधक मनुष्य घर और संसार में (गृहस्थ और भौतिक) रहते अध्यात्म तक पहुँचे हैं और अध्यात्म की उपलब्धि के बाद भी वह गृह त्याग करने वाले नहीं है। कबीर के यहाँ योग मनुष्य की प्रवृत्तियों का परिष्कार और आत्मनियंत्रण यानी पारिवारिक–सामाजिक जीवन का सदाचार है, गृह त्याग द्वारा सामाजिक और सांसारिक मृत्यु नहीं। कबीर के मन में घर को लेकर कोई ग्रंथि या बुढ़ा नहीं है। क्योंकि कबीर व्यक्तिगत मुक्ति के साधक नहीं पारिवारिक मुक्ति के गृहस्थ साधक हैं। वह अपने साथ पूरे परिवार की मुक्ति की बात करते हैं।

बीज शब्द : आजीवक कबीर, संत आन्दोलन, स्त्री चिंतन, धर्म, लोक, समाज, संस्कृति, इतिहास, वैष्णव आन्दोलन, इस्लाम का आगमन, मुक्ति की चेतना का उन्मेष, साधना की आड़ में स्त्री शोषण, जार, जारिणी, गृहस्थ साधक, सदाचार ।

संत आंदोलन और उसके नायक कबीर दोनों ऐतिहासिक हैं। कोई भी आंदोलन निश्चित संदर्भ और विचारधारा से उपजता है वह किसी और या पराई विचारधारा की जमीन से नहीं पैदा होता। संत आंदोलन की उपज भी मध्यकाल के भारत में इस्लाम के आगमन से उत्पन्न नई ऐतिहासिक परिस्थितियों से उपजा था। इस्लाम के आगमन को केवल राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं माना जाता। उसने इस देश की इतिहास, समाज, धर्म

और संस्कृति को भी यहाँ प्रभावित किया है। भारत की शक्तिशाली जातियों के साथ उसकी कमजोर जातियों को भी प्रभावित किया है। लेकिन यह प्रभाव कमजोर और शक्तिशाली जातियों पर एक सा नहीं था। शक्तिशाली जातियों की वर्चस्व की सत्ता प्रभावित होने से कमजोर जातियों पर उनकी पकड कमजोर हुई और कमजोर जातियों में आंतरिक गुलामी से मुक्ति की चेतना का उन्मेष हुआ जो आगे चलकर स्वतंत्र धर्म, दर्शन, समाज और भाषा के आंदोलन का रूप धारण कर लिया। यही कारण है कि समकालीन आलोचना संत आंदोलन को मध्यकालीन सत्ता संघर्ष में एक सशक्त हस्तक्षेप के रूप में देखती है। संत आदोलन चाहे बाहरी (इस्लाम की) सत्ता हो या भीतरी दोनों के खिलाफ एक बगावत है। कबीर का विचारधारा इसी स्वतंत्र आंदोलन की उपज है जो 'ज्ञान की आँधी के रूपक के साथ ना हिन्दू ना मुसलमान के सिद्धांत की अपनी स्वतंत्र जमीन पर आगे बढ़ती है। अतः कबीर उनकी विचारधारा और उनकी कविता का वैदिक पौराणिक परम्परा के आधार पर नहीं, कबीर की अपनी युद्ध की ऐतिहासिक परम्परा और सामाजिक संघर्ष के चिन्तन को जमीन पर ही किया जा सकता है। लेकिन हिन्दी आलोचना ने कबीर और उनके आंदोलन को वैष्णव आंदोलन का अंग– उपांग बना कर उसकी ऐतिहासिकता को उजागर करने के बजाय उलटे उसे ढकने का काम किया। वैष्णव आंदोलन ने अपने समय में संत आंदोलन को लेकर अनेक मिथक, किंवदन्तियों और प्रक्षिप्त गढे। हिन्दी आलोचना में इन मिथकों. किंवदन्तियों और प्रक्षिप्तों की ऐतिहासिक विवेक के साथ जाँच–परख करने के बजाय ऐतिहासिक सत आंदोलन और उसके नायकों कबीर, रैदास को किंवदन्ती और मिथकीय बना कर वैष्णव संस्करण में परिणत कर दिया। फलस्वरूप कबीर उनकी विचारधारा और उनकी कविता का अध्ययन व मूल्यांकन वैष्णव किंवदन्तियों, मिथकों और प्रक्षिप्तों के आधार पर किया जाने लगा और कबीर और उनके आंदोलन की ऐतिहासिकता जाती रही।

लेकिन जिंदा कौमों के चिन्तन का इतिहास कभी खत्म नहीं होता और अनुकूल आबोहवा पाकर वह दफन हुआ चिन्तन फिर से आंदोलन का रूप धारण कर सतह पर आ जाता है। दलित आंदोलन ने अपनी ऐतिहासिक परम्परा की खोज की प्रक्रिया में संत आंदोलन को कब्र से निकाल कर पुनर्जीवित करने का काम किया है। डॉ० अम्बेडकर के बौद्ध धर्मान्तरण के कारण दलितों के संत आंदोलन की विरासत दबती हुई नजर आई लेकिन उत्तर– अम्बेडकर स्वतंत्र चिन्तन ने कबीर और उनकी परम्परा को अन्वेषित कर सतह पर लाने का ऐतिहासिक कार्य कर दिखाया। यही कारण है कि डॉ० धर्मवीर की कबीर विषयक आलोचनाओं से न केवल आजीवक धर्म और दर्शन के रूप में दलित चिन्तन की ऐतिहासिक परम्परा उजागर हुई है बल्कि कबीर की ऐतिहासिक दार्शनिक विचारधारा की परम्परा और कबीर की कविता के स्वतंत्र पाठ का भी पुनर्निर्माण हुआ है। कबीर के साथ उनके ग्रंथ 'बीजक' की ऐतिहासिक परम्परा भी अनावृत्त हुई है। इस तरह हिन्दी आलोचना के उदारवादी और प्रगतिशील विचारधारा ने जहाँ कबीर को अपनी आलोचनाओं से कबीर को उनके समाज, धर्म, दर्शन, इतिहास और भाषा की परम्परा से लगातार विछिन्न करते हुए अकेला करती गई थी (द्रष्टव्य डॉ० रमेशचंद्र मिश्र की 1999

में प्रकाशित पुस्तक 'कबीर अकेला) वहाँ डॉ० धर्मवीर की आलोचनाओं से कबीर फिर से अपनी समाज, धर्म, दर्शन, चिन्तन, भाषा और काव्यत्व के ऐतिहासिक संदर्भ और परम्परा से पुनः सम्बद्ध हो गए हैं। कबीर की कविता को प्रक्षेपों से अलग न करने के कारण कबीर की मूल विचारधारा को जो क्षति पहुंची है, उस से सबसे अधिक नुकसान कबीर के स्त्री सम्बंधी चिन्तन को हुआ है, क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता कि जो सामाजिक चिन्तन से आधुनिक और प्रगतिशील हो वह अपने स्त्री चिन्तन में घोर नकारात्मक. अंतर्विरोधी और प्रतिक्रियावाद की हद तक स्त्री–विरोधी हो कबीर संन्यासियों, योगियों और वैष्णव वैरागियों के स्त्री–सम्बंधी विचारों के घालमेल से घोर स्त्री–विरोधी हो दिख सकते हैं, “कबीर स्त्री विरोधी नहीं है, कबीर को स्त्री विरोधी सिर्फ वही लोग मानते हैं जिन्होंने डोम्बी, बंगालन, चंडालन स्त्रीयों का शोषण साधना की आड़ में किया है |” गृहस्थ कबीर समकालीन यौन स्वच्छंदता वाले स्त्री–मुक्ति विमर्श की नजर में भी मध्यकाल में संकट ग्रस्त परिवार और विवाह संस्था के पक्ष में खड़े होने के कारण स्त्री–गुलामी के पक्षधर भी नज़र आ सकते हैं. लेकिन कबीर अपनी आजीवक परम्परा में कामिनी और व्यभिचारिणी स्त्री के खिलाफ जाकर भी स्त्री–विरोधी नजर नहीं आते हैं। गृहस्थ कबीर स्त्री विरोधी हो भी नहीं सकते क्योंकि कबीर संन्यासी और योगी नहीं होकर किसी मठ या मंदिर में नहीं बैठ सकते थे। कबीर ने योगियों को पुनः घर लाकर उन्हें गृहस्थ बनाने की मांग की है। कबीर जारिणी और कामिनी स्त्री के विरोधी थे क्योंकि इनके कारण मध्यकाल में कबीर और उनके समय के घर और परिवार नष्ट हो रहे थे। कबीर जारिणी स्त्री को ही माया कह कर भर्त्सना नहीं करते बल्कि जार पुरुष को भी नहीं छोड़ते। यह जार पुरुष और जारिणी स्त्री दोनों के खिलाफ जाते हैं और दोनों की कड़ी निंदा करते हैं। इस तरह कबीर और स्त्री नैतिकता की संहिता नहीं रचते बल्कि घर और परिवार संस्था की नैतिकता रचते हैं। इस तरह कबीर स्त्री मात्र या स्त्री जाति के विरोधी नहीं, नैतिकता और सदाचार की दृष्टि से कबीर स्त्री और पुरुष दोनों के निंदक है।

कबीर किवदन्ती पुरुष नहीं, ऐतिहासिक पुरुष है वह पौराणिक काल की नहीं ऐतिहासिक काल की उपज है। कबीर पौराणिक काल के विरुद्ध ऐतिहासिक काल में संघर्ष कर रहे हैं। मध्यकालीनता का निर्माण पौराणिक / सनातन काल और ऐतिहासिक काल दोनों से हुआ है। कबीर की कविता अपने समय में इन दोनों कालों के भीतर संघर्ष करते हुए दोनों के पार जाती है। वह इन कविता इन दोनों के भीतर से गुजरती हुई अपना वैकल्पिक काल रचती है। इस तरह कबीर की कविता पौराणिक आदर्शों से नहीं, ऐतिहासिक अनुभवों की रोशनी में रची गई है। मध्यकालीन इतिहास का पौराणिक काल कबीर की कविता का आंतरिक औपनिवेशिक संदर्भ है तो ऐतिहासिक काल बाह्य औपनिवेशिक संदर्भ। कबीर की कविता इन दोनों के द्वन्द से रची गई है, और इनके पार जा कर आदर्श / वैकल्पिक समाज (यूटोपिया) को रचती है। कबीर का स्वतंत्र दर्शन मध्यकालीनता के सघन बाँध से उपजा है। बिना स्वतंत्र दर्शन के कबीर की कविता की कविता मध्यकालीनता में हस्तक्षेप कर ही नहीं

सकती थीं। कबीर के इस स्वतंत्र दर्शन की पहचान आजीवक परम्परा के रूप में की गई है। कबीर अपनी स्वतंत्र आजीवक परम्परा के दार्शनिक हैं।[1]

कबीर घरबारी और सांसारिक हैं, वे धार्मिक और आध्यात्मिक साधनों के लिए स्त्री मात्र को बाधक नहीं मानते, इसलिए कबीर को धार्मिक या आध्यात्मिक मुक्ति के लिए घर से पलायन या संन्यास का मार्ग ग्रहण करने की जरूरत नहीं पड़ी। कबीर के समाज के पास मंदिर या मठ थे नहीं, और ब्राह्मण के मंदिर या मठ में उसके प्रवेश की मनाही थीं, अतः कबीर चाह कर के भी घर से भाग कर अन्यत्र कोई साधना नहीं कर सकते थे। कबीर के संन्यास और योग का मार्ग रुचा नहीं है। उन्होंने योगियों की भर्त्सना करते हुए कहा है

“काम जराय जोगी होइ गैले हिजरा ।”[2]

इन उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि कबीर काम जराय, हिजरा होने के पक्ष में नहीं है, इसलिए घर उनकी आध्यात्मिक साधना के आड़े कहीं नहीं आता है। इस तरह संन्यासियों/योगियों और गृहस्थों का स्त्री दृष्टि में बुनियादी फर्क होना एकदम स्वाभाविक और अनिवार्य है। मंदिरों और मठों का वातावरण स्त्री–विरोधी हो सकता है, लेकिन गृहस्थ साधकों के लिए घर स्त्री संसर्ग के साथ साधना–स्थली भी है। कबीर ने स्पष्ट लिखा है कि जिस प्रकार ज्ञानी होने के सुख को अज्ञानी नहीं पहचान सकता है, उसी प्रकार नर–नारी के सुख की पहचान 'खसी (हिजरा) नहीं कर सकता |

नर नारी के सुख को, खसी नहीं पहिचान।
त्यों ग्यानी के सुख को, अग्यानी नहिं जान।।[3]

कबीर ऐसे जीवन में आग लगाने की बात करते हैं यानी व्यर्थ मानते हैं। जहाँ भूख मिट जाने पर भोजन मिले. ठंड (शीत) गुजर जाने पर बिछौना और कम्बल मिले और जीवन गुजर जाने पर स्त्री का संसर्ग प्राप्त हो –

भूख गई भोजन मिले. ठंड गई कंवाय
जीवन गया तिरिया मिले, ताको आग लगाय।।[4]

योगियों ओर संयासियों के विरुद्ध कबीर स्त्री की निंदा करने के बजाय स्त्री को रत्न की खान मानते हैं, जिस से मनुष्य साधु सन्त और सज्जन पैदा होता है –

नारी निंदा न करो, नारी रतन की खान ।
नारी से नर होत है, साधू, सन्त, सुजान।[5]

कबीर के लिए स्त्री पाप योनि नहीं है बल्कि रत्न की खान और मनुष्य के उत्तरोत्तर विकास की माध्यम है। फलतः संयासी / योगी और गृहस्थ कबीर की स्त्री दृष्टि में कोई समानता नहीं।

किसी भी दार्शनिक या कवि की सामाजिक दृष्टि के केन्द्र में स्त्री दृष्टि ही प्रधान होती है। दूसरे शब्दों में, स्त्री दृष्टि ही उसकी सामाजिक दृष्टि की कसौटी या आईना होती है। ऐसी स्थिति में स्त्री–विरोधी दृष्टि को समाज विरोधी दृष्टि का पर्याय माना जा सकता है। वर्णवादी सगुण ईश्वर के समानांतर समतामूलक निर्गुण ईश्वर के आधार पर मानव मात्र की समानता और बराबरी की बात करने वाला साधक कवि स्त्री–विरोधी होकर समाज में नहीं ठहर सकता है, फिर उसे संन्यासियों और योगियों की तरह घर, परिवार और समाज से पलायन कर के अन्यत्र शरण लेनी पड़ेगी। गठों में क्या होता रहा है और हिन्दू देवी–देवता क्या करते हैं, इस सब से कबीर भलीभाँति परिचित हैं। तभी कबीर कहते हैं –

"देवचरित सुनहु रे भाई, सो के ब्रह्मा घिया नसाई ।
दूजे सुनी मंदोदरी तारा, तिन घर जेठ सदा लगवारा।
सुरपति जाय अहीलहिं हरी, सुरगुरु घरनि चंद्र मै हरी।
कहै कबीर हरि के गुन गाया, कुती करन कुँवारहिं जाया ।।"[6]

ऐसी स्थिति में कबीर भूले–भटके सन्यासियों और योगियों को मठ से पुनः घर लाने पुनः गृहस्थ बनाने की मांग करते हैं

"अवधू भूले को घर लावै ।
सो जन हम को भावै।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तज बन नहिं जाये।
बन के गए कल्पना उपजे, तब धौं कहाँ समावै?
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।
शून्य ध्यान की आसा तज के, सहज समाधि लगावै ।।
घर की नार जो परघर बसिया, अवघट घाट चलावै।
बाको निरख न्यार हो रहिए, वह सब को बहकावै।।
सुख आनंद साहबी तज के, काहे खाक लगावै ।
सुरत निरत सो मेला कर के, अनहद नाद बजावै ।।
घर में वस्तु बस्तु भी घर है, घर ही बस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू ज्यों का त्यों ठहरावै।"[7]

घर छोड वन–वन भटकने और तीर्थों मठों में उस ज्योति (परब्रह्म) को खोजते–फिरने को कबीर विवेकहीनता कहते हैं ।

"दारा गृह छोडि उदास फिरै, बन खंड में जाइ समाधि लागे |
इंगला पिंगला सुखमना ध्यान, झिलमिल जोति के मद्ध पागे ||
तीरथ में नित भरमि फिरै, कछू नहिं बंदे हाथ लागे ।
कहे कबीर पै बिबेक बिना कछू नहिं बंदे हाथ लागे।।"[8]

कबीर को पर इस उल्टी मान्यता पर आश्चर्य होता है कि घर जलाने पर उबरना (उद्धार) कहा जाता है तो घर को रखने (बचाने पर घर का नष्ट होना कहा जाता है

"घर जारै घर ऊबरै घर राखे घट जाय ।
एक अचम्भा देवियां, मुआ काल को खाय।"[9]

इसलिए कबीर सलाह देते हुए कहते हैं

"प्रेम पिछोरी तान के, सुख मंदिर में सोय ।
घर कबीर, को पाय के, कहां मुक्ति को रोय?"[10]

इस तरह कबीर गृहस्थ साधक हैं और उनकी कविता एक गृहस्थ की कविता है। कबीर किसी भी हालत में संन्यासी या योगी बनकर घर त्यागने का समर्थन नहीं करते। इससे यह तथ्य प्रत्यक्ष होता है कि कबीर की स्त्री के प्रति दृष्टिकोण योगियों और संन्यासियों के स्त्री– दृष्टिकोण से एकदम पृथक और स्वतंत्र है। वैसे कबीर के काव्य में योगी और गृहस्थ की बहस का कोई मतलब नहीं। ऐसा विभाजन मनुष्य को विभाजित करना होगा। कबीर के घर में ही गृहस्थ और सन्यासी दोनों है। कबीर घर में ही गृहस्थ और संयमी (कामी, योगी और सन्यासी नहीं) दोनों का जीवन यानी सदाचार और संतुलन का जीवन जी रहे हैं और ऐसा ही संतुलित और समग्र जीवन की वकालत भी कर रहे हैं। जैसे कबीर कवि के साथ–साथ साधक (धार्मिक) हैं वैसे ही कबीर गृहस्थ होने के साथ–साथ संयमी भी कबीर गृहस्थ हैं, जिनकी योगी और संन्यासी से कोई समानता या मेल नहीं। कबीर गृहस्थ और आध्यात्मिक ए साथ हैं और दोनों जगह संयम पर जोर दे रहे हैं। ये दोनों रूप कबीर के यहाँ अलग–अलग नहीं हैं बल्कि दोनों संयुक्त और संश्लिष्ट रूप में है। डॉ0 धर्मवीर का प्रश्न है कि कबीर को कवि के साथ धार्मिक या धर्म–प्रवर्तक क्यों नहीं कहा जा सकता? यह आदमी के मूल्यांकन में एकागीपन क्यों है? मनुष्य के टुकडे टुकडे क्यों किए जा रहे हैं? यह बहस यही है कि जो आदमी संन्यासी होता है वह गृहस्थ नहीं होता है, और जो गृहस्थ होता है व सन्यासी नहीं हो सकता। यह वैसा ही तर्क है कि जो शासक होता है, वह संगीतकार नहीं हो सकता। यह आदमी की पूर्णता का विभाजन है कि जो पिता होता है वह पुत्र नहीं हो सकता। आदमी किसी का पिता है, किसी का पुत्र है, किसी का भाई है और किसी का पति है। उसे खाँचों में इस रूप में भरना कि उसे अब पत्नी मिल गई है तो अपनी माँ का त्याग करना पड़ेगा गलत है।"[11]

इस तरह कबीर और उनका साधक मनुष्य घर और संसार में (गृहस्थ और भौतिक) रहते अध्यात्म तक पहुँचे हैं और अध्यात्म की उपलब्धि के बाद भी वह गृह त्याग करने वाले नहीं है। कबीर के यहाँ योग मनुष्य की प्रवृत्तियों का परिष्कार और आत्मनियंत्रण यानी पारिवारिक–सामाजिक जीवन का सदाचार है, गृह त्याग द्वारा सामाजिक और सांसारिक मृत्यु नहीं। कबीर के मन में घर को लेकर कोई ग्रंथि या बुढ़ा नहीं है। क्योंकि कबीर व्यक्तिगत मुक्ति के साधक नहीं पारिवारिक मुक्ति के गृहस्थ साधक हैं। वह अपने साथ पूरे परिवार की मुक्ति की बात करते हैं।

संदर्भ :

1. डॉ धर्मवीर, महान आजीवक – कबीर, रैदास और गोसाल (दूसरी पुस्तक : कबीर की वाणी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2017 पृ० 326
2. वही, पृष्ठ 417
3. वही, पृष्ठ 298
4. मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, बाणी प्रकाशन, नई दिल्ली: संस्करण, 1993, पृष्ठ 26
5. वही, पृष्ठ 26
6. वही, पृष्ठ 26
7. वही, पृष्ठ 26
8. कात्यायनी रामविलास शर्मा के कई नवजागरण और मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि, उद्भावना, नवम्बर दिसम्बर, 2012, 26 अंक 104, सम्पादक अजेय कुमार, अतिथि सम्पादक प्रदीप सक्सेना, ए–2, सेक्टर–23, राजनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०), पृष्ठ 2013
9. सूरज पालीवाल, भक्ति काव्य में नारी की स्थिति मीरा के विशेष संदर्भ में (लेख) भक्ति आंदोलन इतिहास और संस्कृति, सम्पादक कुंवरपाल सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,तृतीय संस्करण 2008 (प्रथम 200) पृष्ठ 299
10. वही, पृष्ठ 298
11. प्रेम शंकर, भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007 (प्रथम संस्करण, 2004), पृष्ठ 120

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज - 211002.
संपर्क : 6392798774, 9532188761, ई-मेल : subhashgautam711@gmail.com